© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

# संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य शरीर : एक अवलोकन

**दीपचन्द यादव**
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

बब

काव्य, मनुष्य चेतना की सबसे बड़ी उपलब्धि है। काव्यशास्त्रों में इसी का विश्लेषण किया जाता है। काव्य का लक्षण निर्धारित करना ही काव्यशास्त्र का प्रयोजन है। लक्षण का अर्थ है असाधारण धर्म। काव्यलक्षण का अर्थ है जो वाङ्मय के अन्य प्रकारों से काव्य का भेद दर्शाता है।

प्राचीन काल में काव्य की कोई सुष्ठु परिभाषा नहीं थी परन्तु आचार्य भरतमुनि के कालक्रम से नवीन भाव–भंगिमाओं के कारण काव्य–क्षेत्र बहुत विकसित एवं विस्तृत हो चुका था। इसीलिये काव्यलक्षण रूप में काव्य परिभाषा देने की आवश्यकता पड़ी। वस्तुतः एक ओर अव्याप्ति एवं दूसरी ओर अतिव्याप्ति, इन दोनों के बीच काव्य लक्षण की व्याप्ति को संयमित रखना कठिन कार्य है।

काव्यलक्षण या परिभाषा पर संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने दो विभिन्न धरातलों पर विचार विश्लेषण किया है। काव्यशास्त्रियों के एक वर्ग ने 'शब्द–प्राधान्य' की स्थापना की और काव्य की अभिव्यंजना पक्ष को प्रधानता देते हुए काव्य के असाधारण धर्म की खोज की। जैसे कि–दण्डी ने कहा कि जब कविता समझने की बात आती है, तब शब्द ही पहले आता है, न कि अर्थ। पं0 राज जगन्नाथ भी शब्द की रमणीयता में काव्य के असाधारण धर्म को खोजते हैं। तो आचार्य विश्वनाथ वाक्य में खोजते हैं।

दूसरे वर्ग के विद्वानों ने 'शब्दार्थ–साहित्य मत' की स्थापना की जिनके अनुसार काव्य में विषय–वस्तु की प्रधानता होती है और उसी से काव्य के असाधारण धर्म का पता लगता है।

'शब्दार्थ—साहित्य के अन्तर्गत शब्द और अर्थ पर बल दिया गया है। जब तक कविता—काव्य का अर्थ न समझ लें, तब तक उसका कोई मतलब नहीं है, इसीलिये यहाँ विषयवस्तु महत्वपूर्ण है।

अर्थकाव्यतावादी आचार्य काव्य में अर्थ की प्रधानता को स्वीकार करते हैं इनका विचार है कि जब किसी शब्द का, पद का अर्थ ही नहीं समझ पायेंगे तो उस शब्द का हमारे लिये कोई औचित्य नहीं है।

काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने एक अन्य परम्परा शब्द तथा अर्थ के विवाद में न पड़कर एक नये मत की स्थापना कर अखण्डवाक्यार्थ को काव्य माना।

इस प्रकार प्रमुख रूप से चार विभाग बनते हैं—

1. शब्दकाव्यतावादी
2. अर्थकाव्यतावादी
3. अखण्डवाक्यार्थ काव्यतावादी
4. शब्दार्थ काव्यतावादी

काव्य विषयक प्रथम अवधारणा के अनुसार 'शब्द' ही काव्य है और अर्थ शब्द पर आश्रित होते हैं इसलिये उसे काव्य शरीर के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। शब्द प्राधान्यवादी आचार्यों में दण्डी का नाम सर्वप्रथम आता है। इन्होंने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि—**"शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'**[1] अर्थात् इष्ट अर्थ से युक्त पदावली ही काव्य शरीर है। यहाँ दण्डी पदावली को महत्त्व देते हैं परन्तु अर्थ को नकारते भी नहीं हैं। अर्थ ग्रहण करने से पहले शब्द आता है फिर उसके बाद उसका अर्थ आता है। इन शब्दों की ध्वन्यात्मकता का भी महत्त्व है भले ही अर्थ का अनुधावन न हुआ हो। दण्डी शब्दों को ही अर्थों से परिपूर्ण मानते हैं। इनके अनुसार इष्ट ही वह असाधारण धर्म है जिससे काव्य को विशेषता प्राप्त होती है और वह काव्य का रूप धारण करता है। काव्यप्रकाश के टीकाकार चण्डीदास ने भी शब्द को काव्यशरीर स्वीकार करते हुए आचार्य मम्मट के शब्दार्थ शरीर विषयक अवधारणा का खण्डन किया है।[2] उनका विचार था कि आचार्य मम्मट ने भी शब्द और अर्थ में शब्द को पहले रखकर शब्द को प्रमुखता दी है। परन्तु इनका मत सर्वथा सत्य नहीं है, हाँ इतना माना जा सकता है कि

चण्डीदास ने शब्द समूह में आस्वाद्यता स्वीकार करते हुए उसी को काव्यशरीर माना तथा आचार्य मम्मट के तथ्य को अपने विचारानुकूल बनाने का प्रयास किया है।

आचार्य विश्वनाथ देव ने एक स्थान पर शब्द को काव्य कहा है तथा अन्य स्थलों पर काव्य को। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन तो किया है, परन्तु मम्मट का नहीं। उन्होंने 'शब्द काव्यम्' कहकर शब्द की इस प्रकार परिभाषा दी है–

**आकाङ्क्षायोग्यतायुक्तस्तात्पर्यादिसमन्वितः।**

**शाब्दानुभवकारी यः सः परिकीर्तितः।।**[3]

इस काव्य लक्षण में अर्थ का भी समावेश हो जाता है परन्तु इनका झुकाव शब्द की तरफ अधिक था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आचार्य विश्वनाथ देव ने अर्थविशिष्टशब्द को काव्यशरीर माना है।

इसी सम्प्रदाय के विद्वान पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।

**'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'**[4]

यद्यपि पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य के अर्थ–पक्ष की अवहेलना नहीं की है और इसकी रमणीयता को असाधारण धर्म के रूप में स्वीकृति दी है। रमणीयता की व्याख्या करते हुए चमत्कारत्वमेव या काव्यत्वम् कहकर चमत्कार को काव्य के विशेष तत्त्व के रूप में ग्रहण किया है जिससे काव्य की काव्यात्मकता प्रमाणित होती है। इन्होंने कहा कि यदि हम अर्थ को भी काव्यशरीर मानेंगे तो उसका पाठ किस प्रकार करेंगे। अतः शब्द ही काव्य है।

शब्द प्राधान्यवादी आचार्य विश्वनाथ ने शब्दों से बने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है–

**''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्''**[5]

किसी शब्द का जो अभिधेय होता है वह उसका अर्थ होता है वह शब्द तथा उसका अर्थ दोनों मिलकर पद बनाते हैं और इन्हीं पदों के समुच्चय को ही वाक्य कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार वाक्य की रसमयता ही वह असाधारण धर्म है जिससे काव्यात्मकता की प्रतीति होती है परन्तु रस की स्थिति के सम्बन्ध में उनका स्पष्ट होना आवश्यक है।

इस प्रकार शब्द को काव्यशरीर मानने वाले आचार्यों ने अनेक युक्तियाँ दी हैं परन्तु शब्द को ही काव्य का प्राणतत्त्व मानना ठीक नहीं है क्योंकि बिना अर्थ के काव्य हो ही नहीं सकता। यदि हम इस मत को मान भी लें तो नाट्य के सन्दर्भ में विसङ्गति उत्पन्न हो जायेगी वहाँ तो अर्थ ही सर्वोपरि है।

अर्थकाव्यतावादी आचार्य काव्य में अर्थ की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। काव्य के चारुत्व उसके अर्थ के कारण आता है तथा शब्द अर्थ की प्रतीति में सहायक होते हैं।

**यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।**

**व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।**[6]

इस परम्परा का निर्वाह ध्वनिवादी आचार्य करते हैं। यद्यपि ध्वनिवादी आचार्यों ने शब्दार्थ युगल में काव्य की काव्यता स्वीकार की है परन्तु उनका झुकाव अर्थ की तरफ अधिक था तथा वे काव्य के भेदों–प्रभेदों का निर्धारण इसी अर्थ तत्त्व के आधार पर किया करते हैं। शब्दवादी आचार्यों ने शब्द को काव्य सिद्ध करने के सन्दर्भ में अनेक युक्तियां दीं, उनमें से एक है शब्द का मूर्त रूप। एक शब्द विशिष्ट अर्थ की प्रतीति कराता है। शब्द के अभाव में अर्थ की सत्ता ही सम्भव नहीं है इसलिये शब्द की प्रधानता होती है परन्तु अर्थकाव्यतावादी आचार्यों का मत है कि काव्य में अर्थ की प्रधानता होती है तथा शब्द का कार्य है मात्र अर्थ की प्रतीति कराना। अर्थात् साधन को ही साध्य मान लेना गलत है। यद्यपि इस परम्परा को मानने वाले आचार्यों की संख्या कम ही है फिर भी रसवादी तथा ध्वनिवादी आचार्य इसका समर्थन करते हुये अवश्य दिखायी पड़ते हैं।

काव्यशास्त्रीय आचार्यों की एक अन्य परम्परा शब्द तथा अर्थ के विवाद में न पड़ते हुए अखण्डवाक्यार्थ को काव्य मानते हैं। इस परम्परा के अनुसार काव्य में न तो शब्द की प्रधानता होती है और न ही अर्थ की, साथ ही न तो शब्द तथा अर्थ में कोई गौण प्रधान भाव है। इस दृष्टिकोण के अनुसार शब्द तथा अर्थ के भीतर तादात्म्य सम्बन्ध होता है। इस कारण दोनों को अखण्ड समझा जाता है। इसलिये अखण्डकाव्यार्थ को ही काव्य मानना चाहिए। इस सन्दर्भ में साहित्यसुधासिन्धुकार आचार्य विश्वनाथ देव का मत है–

**वस्तुतस्तु अदोषं गुणर्वकाव्यमित्यादिवाक्यप्रतिपादित–**

**स्वर्गविशेषजनकतावच्छेदकं काव्यत्वमखण्डं कल्पनीयं तथा च**

**तदेव लक्षणमस्तु किमनेनानुगतने लक्षणेन इति सर्वं सुस्थम्।[7]**

शब्दार्थकाव्यतावादी आचार्यों का मानना है कि काव्य में शब्दार्थ की स्थिति अर्धनारीश्वर की भाँति होती है उनको पृथक–पृथक नहीं किया जा सकता। अर्वाचीन काव्यशास्त्रीय आचार्य प्रो0 राजेन्द्र मिश्र का मत है कि 'लोकोत्तर रसगर्भ एवं स्वभावज आख्यान को काव्य कहते हैं।[8] इनकी दृष्टि में आख्यान ही काव्य है। आख्यान से इनका तात्पर्य शब्दार्थ की अखण्डता से है। इन्होंने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि आख्यान को ही काव्य मानना अधिक संगत है क्योंकि ऐसा मानने से किसी एक के प्रति पक्षपात का अवसर नहीं मिलता है।

साहित्यशास्त्रीय परम्परा के अधिकांश आचार्य शब्दार्थ को काव्य मानते हैं। इन सभी के अनुसार शब्द और अर्थ दोनों संयुक्त रूप से काव्य में होते हैं कोई प्रधान नहीं होता। दोनों की स्थिति समान होती है। शब्दार्थ की समष्टि में काव्यत्व स्वीकार करने वाले आदि आचार्य कालिदास हैं–

**वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।**

**जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।[9]**

अर्थात् जिस प्रकार से अर्धनारीश्वर में शिव एवं पार्वती की प्रधानता एवं अप्रधानता का निर्धारण करना तर्कसंगत नहीं है उसी प्रकार काव्य में शब्द तथा अर्थ की प्रधानता तथा गौणता का निर्धारण करना सम्भव नहीं है।

आचार्य भामह आद्यकाव्यशास्त्रीय आचार्य स्वीकार किये गये हैं। इन्होंने सर्वप्रथम काव्य का लक्षण किया है–

**"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"।[10]**

अर्थात् शब्द तथा अर्थ मिलकर काव्य कहे जाते हैं। इन दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध होता है।

रीति सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य वामन ने भी अपने पूर्ववर्ती आचार्य भामह के मत का अनुकरण करते हुये शब्दार्थ को काव्य माना है।[11] रुद्रट ने भी 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्''[12] कहकर शब्दार्थ को काव्य माना है। इनके बाद आचार्य आनन्दवर्धन ने भी शब्दार्थ में काव्यत्व स्वीकार किया है। कुन्तक ने अपनी पुष्ट परिभाषा में भामह की विचारधारा का प्रसार करते हुए वक्रोक्ति को शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य के असाधारण तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी काव्य परिभाषा है–

**शब्दार्थौसहितौ वक्रकविव्यापार शालिनी।**

**बन्धे व्यवस्थितो काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी।''[13]**

अर्थात् काव्य–मर्मज्ञों को आनन्द देने वाली विशिष्ट कवि व्यापार युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ का सहभाव काव्य है।

आचार्य राजशेखर ने शब्द तथा अर्थ दोनों को पद संज्ञा से अभिहित किया है तथा उसी में काव्यत्व स्वीकार किया है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि–'शब्दार्थयोर्यथावत् सहभावेन विद्या साहित्यविद्या'[14] अर्थात् शब्द और अर्थ का यथोचित सहभाव साहित्यविद्या कहलाता है। आचार्य मम्मट एक समन्वयवादी आचार्य हैं इन्होंने भी दोषरहित गुण सहित और कहीं–कहीं अलंकाररहित शब्द तथा अर्थ को काव्य माना है।[15] इस काव्यपरम्परा का अनुकरण करने वाले आचार्यों ने शब्दकाव्यतावाद एवं अर्थकाव्यतावाद का खण्डन किया है, परन्तु अखण्डवाक्यार्थकाव्यतावाद का न तो खण्डन किया है और न ही समर्थन किया है। इस परम्परा के आचार्यों का मानना है शब्द तथा अर्थ दोनों का समभाव ही काव्य है यदि हम इनमें से किसी एक में काव्यत्व मान लेंगे तो शब्दालंकार, अर्थालंकार शब्दगुण तथा अर्थगुण जैसा विभाग ही नहीं बन पायेगा।

इस तरह काव्यशास्त्र में जहां शब्द प्राधान्यवादी आचार्यों ने शब्द को महत्त्वपूर्ण मानते हुए चमत्कार को उसका असाधारण धर्म स्वीकार किया है तो वहीं अर्थवादियों ने शब्द को एक साधनमात्र माना है इनका झुकाव अर्थ की तरफ है ये अर्थ को ही साध्य मानते हैं। कुछ आचार्य शब्द अखण्डकाव्यतावाद की धारणा को स्वीकार करते हैं इनका मानना है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध होता है। ये एक दूसरे पर ही पूर्णतया आश्रित होते हैं। वे आचार्य जो शब्दार्थ को काव्य का प्राणतत्त्व मानते हैं उनका कहना है कि काव्य वह है जहाँ शब्दार्थ का

कलात्मक प्रयोग हुआ है अर्थात् कवि की कुशलता प्रस्फुटित हो रही है क्योंकि शब्दार्थ के सहभाव का असाधारण धर्म रसध्वनि है जो कि कवि की मानसिक वृत्ति में निहित रहती है और विषयवस्तु के साथ अविभाज्य रूप में प्रकट होती है। इस तरह शब्दार्थ के साहित्य का चमत्कार ही काव्य है। दूसरे शब्दों में कहें तो काव्य कवि के समग्र अनुभव की चमत्कारी अभिव्यंजना है।

## सन्दर्भ–सूची


1. दण्डी, काव्यादर्श, 1, 10।
2. काव्यप्रकाश, 1, 4 दीपिका टीका।
3. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यसुधासिन्धु, 2, 8।
4. पं0 जगन्नाथ, रसगंगाधर 1, पृ0 10।
5. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण।
6. पण्डितराज जगन्नाथ, ध्वन्यालोक, 1, 13।
7. आचार्य विश्वनाथ देव, साहित्यसुधासिन्धु, 1, 4 वृत्त भाग।
8. काव्यं लोकोत्तराख्यानं रसगर्भं स्वभावजम्।

   – प्रो0 राजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, 1, 34।
9. महाकवि कालिदास, रघुवंशम्, 1.1।
10. आचार्य भामह, काव्यालङ्कार, 1, 16।
11. काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयो वर्तते।
12. रुद्रट, काव्यालंकार 2.1।
13. आचार्य कुन्तक, वक्रोक्तिजीवितम्, पृ0 58।
14. आचार्य राजशेखर, काव्यमीमांसा, प्रथम अधिकरण, अध्याय–2।
15. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, पृष्ठ 19।